E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

उपमा अलंकार

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

प्रकृति-

यह अर्थालंकार है। (अर्थालंकार वह है जप शब्द विशेष को परिवर्तित कर देने पर भी, अर्थगत सौन्दर्य की अक्षुण्णता के कारण बना रहता है)

व्युत्पत्ति-

उपमा शब्द 'उप' एवं 'मा' के योग से निष्पन्न होता है। 'उप' का अर्थ है निकट एवं 'मा' का अर्थ है मापना या तौलना-'उप समीपे मीयते परिच्छद्यते अनयेत्युपमा'। उपमा अलंकार में दो पदार्थों को निकट रखकर एक-दूसरे के साथ साम्य-स्थापन किया जाता है।

इतिहास-

उपमा अलंकार का व्यावहारिक रूप 'ऋग्वेद' के अनेक मन्त्रों में उपलब्ध होता है तथा उपनिषदों में भी इसके अनेक सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। जहाँ तक शास्त्रीय मीमांसा तथा आलंकारिक मान्यता का प्रश्न है, इसकी सत्ता यास्क से भी प्रचीन है। यास्क के पूर्ववर्ती गार्ग्य ने उपमा का विवेचन करते हुए बताया है कि उपमान के साथ भिन्न वस्तु के सादृश्य-प्रतिपादन को उपमा कहते हैं।पाणिनि एवं पतञ्जलि प्रभृति वैयाकरणों ने भी उपमा का निर्देश कर इसकी प्राचीनता सिद्ध की है।

लक्षण-

उपमा अलंकार को परिभाषित करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-

"साधर्म्यमुपमा भेदे"

अर्थात् (उपमान और उपमेय का) भेद होने पर साधर्म्य (सादृश्य) का कथन उपमा अलंकार है।

इसे स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-**"उपमानोपमेययोरेव न तु कार्यकारणादिकयोः साधर्म्यं भवतीति तयोरेव समानेन धर्मेण सम्बन्ध उपमा"।** अर्थात् उपमान और उपमेय का ही

साधर्म्य होता है। कार्य और कारण का साम्य नहीं होता। इसीलिए उन दोनों का ही समान धर्म से सम्बन्ध होना उपमा है।

आचार्य विश्वनाथ उपमा को परिभाषित करते हुए कहते हैं-"प्रस्फुटं सुन्दरं साम्यमुपमेत्यभिधीयते"। अर्थात् अभिधावृत्ति से प्रतिपाद्य और चमत्कारजनक उपमान और उपमेय के सादृश्य को उपमा अलंकार कहते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि उपमेय और उपमान में भिन्नता होते हुए भी साम्य की स्थापना को उपमा कहते हैं।

स्पष्टीकरण-

उपमा एक सर्वाधिक चमत्कारपूर्ण अलंकार है। यहाँ पर चमत्कार सादृश्य पर आधारित है और सादृश्य दो वस्तुओं (उपमान-उपमेय) में पाया जाता है। इस प्रकार उपमान और उपमेय में समान धर्म के द्वारा सादृश्य का कथन उपमा अलंकार है।

यहाँ ध्यातव्य है कि उपमान और उपमेय में भेद होना आवश्यक है। जहाँ पर उपमान और उपमेय एक होंगे, उनमें भेद नहीं होगा, वहाँ उपमा अलंकार नहीं होगा। जैसे 'रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव' में उपमान और उपमेय दोनों एक हैं, उनमें भेद नहीं है। इसीलिए यहाँ उपमा अलंकार नहीं है।

उपमा अलंकार के सम्बन्ध में निम्नांकित बाते ध्यातव्य हैं-

(क) उपमा में सादृश्य का प्राधान्य होता है।

(ख) यह सादृश्यमूलक भेदाभेद प्रधान अलंकार है।

(ग) देश, कला, क्रिया एवं स्वरूपादि के कारण भिन्नता होने पर भी उपमेयोपमान में अल्प साम्य के कारण उपमा होती हैं। दो पदार्थों में सर्वात्मना साम्य संभव नहीं, अतः उपमेयोपमान में अल्प साम्य या सादृश्य के कारण भी उपमा संभव है।

(घ) इसमें चमत्कारपूर्ण साधर्म्य का कथन होना चाहिए अर्थात् अनुयोगी (उपमेय) एवं प्रतियोगी (उपमान) के बीच चमत्कारपूर्ण या आकर्षक साम्य का वर्णन आवश्यक है।

(ङ) उपमान का उत्कृष्ट गुणवाला एवं उपमेय का अल्पगुण शाली होने का भी संकेत किया गया है।

(च) उपमा का प्रयोग निंदा, प्रशंसा एवं तथ्य-कथन के रूप में होता है।

(छ) उपमा के सात दोष माने गए हैं हीनत्व, अधिकत्व, लिंगभेद, वचनभेद, उपमेयोपमान का असादृश्य एवं असंभवत्व ।

(ज) उपमालंकार में उपमेयोपमान के बीच एक गुणादिसिद्ध समानता का निदर्शन होना चाहिए।

(झ) उपमा में उपमेय के मनोहारित्व की सिद्धि होती है। इसमें क्रियापदों में भी सुदरता होनी चाहिए अर्थात् उपमा-निरूपण के लिए आकर्षक शैली भी आवश्यक है।

(ञ) भेद होने पर भी उपमेयोपमान में धर्म-साम्य के कारण उपमा की स्थिति संभव है। उपमेयोपमान की सजातीयता आवश्यक नहीं है।

(ट) इसमें भेदाभेदतुल्यत्व होना चाहिए।

(ठ) उपमा में एक वाक्यगत साम्य प्रतिपादन होता है।

(ड) सुदर सादृश्य ही उपमा है, जो वाक्यार्थ का उपस्करारक हो।

(ढ) उपमान की स्वतःसिद्धि अनिवार्य न होकर वैकल्पिक है अर्थात् उपमा में उपमान का लौकिक होना आवश्यक नहीं है। कल्पित उपमेयोपमान में भी उपमालंकार की सिद्धि होती है।

(ण) उपमा में दो पदार्थों में साधर्म्य रहने पर भी वैधर्म्य के तत्त्व विद्यमान रहते हैं। मुख को चंद्रमा के सदृश कहने पर भी मुख चंद्र नहीं हो सकता। मुख और चंद्र में कतिपय कारण या गुण के कारण ही समता दिखाई पड़ती है, दोनों में पूर्ण साम्य नहीं होता ।

उपमा के अवयव-

उपमा के चार अवयव हैं-उपमेय, उपमान, वाचक और साधारण धर्म। इनका विवेचन आगे किया जा रहा है-

क) उपमेय-उपमा अलंकार में उपमेय सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। उपमेय का अर्थ है-'उपमा देने योग्य'। जिस पदार्थ का साम्य अन्य पदार्थ के साथ स्थापित किया जाए, उसे उपमेय कहते हैं। यह सदा कवि का वर्ण्य विषय हुआ करता है अर्थात् कवि के वर्ण्य को ही प्रस्तुत कहते हैं। वह किसी विशिष्ट भाव के उद्योतन के निमित्त ही उपमेय की तुलना उपमान के साथ करता है। अलंकारशास्त्र में कतिपय आचार्यों ने यह विचार व्यक्त किया है उपमेय निकृष्ट गुणवाला होता है

और उपमान उत्कृष्ट गुणोपेत। इसके अन्य नाम हैं-वर्ण्य, प्रस्तुत, विषय, प्रकृत, प्राकरणिक एवं प्रासङ्गिक।

ख) उपमान-जिससे उपमेय की समता की जाती है या जिससे तुलना की जाए, उपमा दी जाए, उसे उपमान कहते हैं। इसे अवर्ण्य, अप्रस्तुत, विषयी, अप्रकृत, अप्राकरणिक एवं अप्रासङ्गिक भी कहा जाता है। उपमान या अप्रस्तुत का महत्त्व सौन्दर्याभिव्यक्ति के साधन के रूप में है। कवि उपमान के द्वारा ही अपनी अनुभूति को पाठक के समक्ष उपस्थित करता है, अतः यह वह माध्यम है, जो कवि-हृदय की भावना को पाठक के निकट पहुँचाकर दोनों के मध्य साधारणीकरण कराता है या कवि की सौन्दर्यानुभूति को रूपायित करता है। उपमेय के उत्कर्ष के लिए ही उपमान का प्रयोग होता है। उपमानों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। मानव एवं मानवेतर जगत् तक इसकी विशाल परिधि दिखाई पड़ती है। इसे कई क्षेत्रों में विभक्त किया जा सकता है, जैसे-प्राकृतिक उपमान, सांस्कृतिक उपमान, वैयक्तिक उपमान, साहित्यिक उपमान एवं सामयिक उपमान। उपमा का सारा महल उपमान की उत्कृष्टता पर ही खड़ा है।

ग) साधारण धर्म-जिस गुण के कारण दो पदार्थों में साम्य-निबन्धन हो, उसे साधारण धर्म कहते हैं। यह धर्म, जाति, गुण, क्रिया एवं द्रव्यस्वरूप चतुर्धा कल्पित होता है। इसके लिए धर्म, समानधर्म एवं साधर्म्य शब्द भी व्यवहृत होते हैं।

घ) वाचक-उपमेय और उपमान के बीच जिन सादृश्यमूलक शब्दों के द्वारा साम्य-स्थापन होता है, उन्हें वाचक या उपमावाचक अथवा सादृश्यवाचक कहते हैं। औपम्य-सूचक शब्दों को वाचक कहा जाता है। कतिपय उपमावाचक शब्द हैं-इव, वत्, वा, यथा, समान, तुल्य, निभ, संकाश, सदृक्, सदृश, सजातीय, सरूप, सम, तुलित, अन्यून आदि।

वैशिष्ट्य-

सभी अलंकारों में उपमा को प्रथम स्थान प्रदान किया गया तथा इसे समस्त अर्थालंकारों का प्राण एवं सादृश्यमूलक अलंकारों का बीजभूत स्वीकार किया गया है। संस्कृत साहित्यशास्त्र में भरत से लेकर पंडितराज तक आलंकारिकों ने अलंकार-विशेष के प्रति अधिक आस्था दिखाई है और उसका यशोगान भी किया है। उपमा को उन सब में सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। अलंकार-संप्रदाय के

अन्तर्गत जितने भी अलंकारों (अर्थालंकारों) का निरूपण किया जाता है, उनमें उपमा सर्वप्रथम एवं सर्वाधिक लोकप्रिय अलंकार है। यह अर्थालंकारों का तो मूलाधार है हो, इसका प्रभाव भी व्यापक है। समग्र सादृश्यमूलक अलंकार किसी-न-किसी प्रकार उपमा से अभिभूत एवं उपकृत हैं। दंडी, राजशेखर, प्रभृति आचार्यों ने मुक्तकंठ से इसकी महनीयता की प्रशस्ति की है तथा इसे अलंकारों में मूर्धन्य पद प्रदान किया है। आचार्य राजशेखर इसे अलंकारों का शिरोरत्न, काव्यसम्पदा का सर्वस्व तथा कविवंश की जननी स्वीकार करते हैं। अर्वाचीन आलंकारिकों में अप्ययदीक्षित सर्वाधिक महत्त्व देते हुए इसे उस नटी के सदृश मानते हैं, जो काव्य के रंगमंच पर अनेक भूमिकाओं में आकर अपनी नृत्य-कला से सहदयों का रंजन करती है। इन्होंने उपमा के ज्ञान को ब्रह्मज्ञान के सदृश बताया है। जिस प्रकार ब्रह्मज्ञान के द्वारा इस चित्र-विश्व का ज्ञान होता है, उसी प्रकार उपमा के ज्ञान से कवि-द्वारा चित्रित या सृष्ट चित्र-विश्व का ज्ञान प्राप्त होता है-

उपमैका शैलूषी सम्प्राप्ता चित्र भूमिकाभेदान्।
रञ्जयति काव्यरङ्गे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः।।
तदिदं चित्र विश्वं ब्रह्मज्ञानादिवोपमाज्ञानात्।
ज्ञातं भवतीत्यादौ निरूप्यते निखिलभेदसहिता सा।।

प्राचीनता, व्यापकता, लोकप्रियता एवं सौंदर्यप्रियता की दृष्टि से उपमा का महत्त्व असंदिग्ध है। इसका प्राण है औपम्य या सादृश्य, जो अधिकांश अलंकारों में दिखाई पड़ता है; अतः इसी तत्त्व के प्राधान्य के कारण उपमा की सर्वालंकारता स्वतः सिद्ध हो जाती है। सादृश्य या औपम्य भारतीय सौंदर्य-दर्शन की आधारशिला है और इसी पर अधिष्ठित होने के कारण उपमा का महत्त्व अप्रतिम है।

भेद-

आचार्य मम्मट उपमा अलंकार के भेदों का वर्णन करते हुए कहते हैं-"पूर्णा लुप्ता च"। इसको स्पष्ट करते हुए आचार्य मम्मट कहते हैं-"उपमानोपमेयसाधारणधर्मोपमाप्रतिपादकानामुपादाने पूर्णा। एकस्य द्वयोस्त्रयाणां वा लोपे लुप्ता"। अर्थात् उपमान, उपमेय, साधारण धर्म और उपमावाचक शब्द (इन चारों) का ग्रहण होने पर पूर्णा (पूर्णोपमा) और उन चारों में से एक, दो या तीन का लोप होने पर 'लुप्तोपमा' होती है।

उदाहरण-

मधुरः सुधावदधरः पल्लवतुल्योऽतिपेलवः पाणिः।

चकितमृगलोचनाभ्यां सदृशी चपले च लोचने तस्याः।।

अर्थात् उस नायिका का अधरोष्ठ अमृत के समान मधुर है, पाणि पल्लव के समान अत्यन्त कोमल है तथा उसके नेत्रयुगल घबराये हुए हिरण के नेत्रों-सरीखे चञ्चल हैं।

स्पष्टीकरण-

प्रस्तुत उदाहरण पूर्णोपमा का है। इसमें तीन उपमाएं हैं जिनमें अधर, पाणि तथा लोचन क्रमशः उपमेय हैं। सुधा, पल्लव तथा चकितमृगलोचन क्रमशः उपमान हैं। मधुर, अतिपेलव (कोमल) तथा चपल क्रमशः साधारण धर्म हैं। वत्, तुल्य तथा सदृश वाचक शब्द हैं।